पगडंडी वाले लोग

कागद कोरे – प्रभाष जोशी

(जनसत्ता 6 सितंबर 1992)

रेगेजी गुरूजी का सम्मान करते हुए

अब विष्णु चिंचालकर यानी गुरूजी से अपना घरोपा कोई आजकल का नहीं है। तीस-बत्तीस साल तो हो गए होंगे। फिर भी अरुण डिके ने कहा कि हम लोग एक कमेटी बना कर गुरूजी की पचहत्तरवीं वर्षगांठ मनाएं तो अपन उत्साह में आने के बावजूद पहले गुरूजी के पास पहुंचे। जैसे संकोची और गायब होने वाले जीव गुरूजी हैं हरेक बात पर उनसे सहमति लेना जरूरी है नहीं तो सम्मान करते करते आप ऐसा कुछ कर गुजरे जो उन्हें अपमानजनक भी लग सकता है।

दिल्ली में एक बार सोने से पहले मैंने उन्हें कुमारजी का एक भजन सुनवाया। कुमारजी का ज्यादातर गुरूजी का सुना हुआ है। लेकिन वह भजन उन्हें बहुत ही चुभ गया। दूसरे दिन उन्होंनें कहा कि मैं उन्हें उसकी एक कापी दे दूं। वह तो हो ही सकता था। पर मुझे थोड़ा अजीब लगा कि एक तो वह भजन टेप पर उनके पास नहीं था और दूसरे चाहिए भी था तो उसकी कॉपी वे मुझसे मांग रहे थे। मैंने पूछा – लेकिन यह भजन तो आप कुमारजी से खुद भी ले सकते हैं। गुरूजी ने बहुत धीमे और लगभग शर्माते हुए कहा – कुमारजी का ऐसा है कि पता नहीं कब क्या कर दें। मान लो अपन ने मांगा और वो ना कर दें तो अपनी तो चालीस-पैंतालीस साल की दोस्ती धरी रह जाएगी। कुमारजी पर वे इतना भी अधिकार नहीं मानते थे कि जो अच्छा लगे ले लें हालांकि दोनों की दोस्ती और एक-दूसरे के प्रति सम्मान अवर्णनीय था। लेकिन कुमारजी ही नहीं किसी भी मित्र या सूत्र संबंध पर गुरूजी अपना कोई अधिकार नहीं जताते। घर में कोई आ जाए और उसे चाय पिलानी हो तो माई से ऐसे कहते मानो चाय बनवाने का उनका अधिकार न हो। माई (यानी उनकी पत्नी) बेचारी और भी मितभाषी और सेवा के लिए, कष्ट सहने के लिए हमेशा तैयार। माई के चले जाने के बाद तो गुरूजी अब शायद ही किसी पर अपना कोई अधिकार मानते हों। बेटे दिलीप और बेटी तारा पर भी नहीं। अपने इस छोटे से परिवार के लिए गुरूजी ने वह भी नहीं किया जो उनके जैसी कीर्ति वाला आदमी कर सकता था। और इस परिवार ने भी गुरूजी से ऐसी कोई उम्मीद नहीं रखी जो पत्नी और बेटे-बेटी आम तौर पर रखते हैं।

ऐसे आदमी का सम्मान समारोह उन पर अनधिकार चेष्टा भी हो सकता है। तो गुरूजी ने कहा कि हमारी इच्छा है कि हम आपकी पछत्तरवीं वर्षगांठ मनाएं। ये करें वो करें यानी हम जो भी कर सकते हैं करें। और हम जैसा कि आप जानते हैं कि थोड़ा बहुत तो कर ही सकते हैं और करना भी चाहते हैं। गुरूजी ने बताया एक तो पांच सितंबर को उनका सही जन्मदिन नहीं है। रिकार्ड में चला गया तो चला गया सो चल भी रहा है। मैं ऋषि पंचमी के दिन जन्मा हूं और उसी को अपना जन्म दिन मानता हूं। लेकिन पछत्तरवीं वर्षगांठ के बारे में हमारे जो भी भव्य विचार और लम्बी-चौड़ी योजनाएं थीं उन पर पानी फिर गया। राष्ट्रपति या मुख्यमंत्री के हाथों सम्मानित होना उन्हें ठीक नहीं जंचा। सम्मान राशि इकट्ठी किए जाने के वे खिलाफ थे। औपचारिक समारोह, चमक-दमक, तामझाम कुछ भी उन्हें बर्दाश्त नहीं था। पचछत्तर के हो जाना अपना कोई पराक्रम नहीं है। समय ने अपना काम किया है। बहुत प्रेम से लेकिन बिना किसी जोरदार विरोध के गुरूजी ने हमारे उत्साह पर ठंडा पानी फेर दिया। न कमेटी बनी, न धन इकट्ठा हुआ, न राजनेताओं से बात हुई। मालवा उत्सव का उद्घाटन उनके सम्मान से हो। और इंदौर के रजवाड़े पर मुख्यमंत्री करें जो यों भी मालवा उत्सव का उद्घाटन करने ही वाले थे - इससे भी गुरूजी को संकोच था।

मालवा उत्सव पर तीन पीढ़ी के चालीस कलाकारों की हलातोल प्रदर्शनी भी देवलालीकर कला वीथिका मे लगी थी। गुरूजी का भी एक चित्र उसमें था। हुसैन, बेंद्रे, डीजे जोशी, चंद्रेश सक्सेना से लेकर ईश्वरी रावल और प्रभु जोशी के भी चित्र थे। प्रदर्शनी का उद्घाटन करने के बाद मुख्यमंत्री पटवा - माधव शांताराम रेगे का सम्मान करने वाले थे। रेगे मास्तर मतलब - हुसैन, बेंद्रे, डीजे जोशी और विष्णु चिंचालकर को आर्ट स्कूल में कला सिखाने वाले। मैं तो उन्हें जानता था क्योंकि रावजी बाजार में वे रहते थे जहां मेरा बचपन बीता। लेकिन दुनिया कहां जानती है कि कहीं से भी कलाकार न लगने वाले रेगे मास्तर ने हुसैन, बेंद्रे और विष्णु चिंचालकर को रेखा खींचना सिखाया है। और रेगे मास्तर भी भारत छोड़ो आंदोलन में जाने के लिए स्कूल छोड़ गए। गुरूजी कहते हैं कि रेगे मास्तर सफेद टोपी, सफेद कमीज, सफेद धोती और अंगोछा भी सफेद रखते थे। सब खादी का। भारत छोड़ो आंदोलन में कूदे तो सब छोड़ दिया। लेकिन आजादी के बाद स्वतंत्रता संग्राम सेनानी होना का ताम्र-पत्र और पेंशन लेने से इंकार कर दिया। अब पिच्चासी के हैं और देवास जिले में अपने गांव में रहते हैं। उन्हें सम्मान स्वीकार करने के लिए गांव से लाया गया था। गुरूजी ने कहा रेगे मास्तर के हाथों सम्मानित होना मुझे अच्छा लगेगा।

तो पचहत्तरवें साल में जाने के कुछ घंटे पहले अपने कला गुरू देवलालीकर के नाम पर बनी गैलरी में अपने मास्तर रेगे के हाथों गुरूजी सम्मानित हुए। तख्त पर सफेद चादर के मंच पर रेगे मास्तर के पास बैठे गुरूजी ने पहले अपने गुरू को माला पहनाई। फिर रेगे मास्तर को उठना न पड़े इसीलिए वे उनके चरणों में ही बैठ गए। रेगे साब ने गुरूजी को माला पहनाई, नारियल दिया, शाल उड़ाई और गले लगाने की बजाए दोनों हाथों से गाल थपथपाए जैसे बच्चों के थपथपाए जाते हैं। फिर रेगे मास्तर और गुरूजी दोनों की आंखों से धाराधार होने लगा। उस छोटे से हॉल में जो कलाकार और मित्र मंडली, मुख्यमंत्री पटवा और सांसद सुमित्रा महाजन और जो भी थे इस गुरु शिष्य प्रेमालाप से जैसे अभिभूत हो गए। गुरूजी तो थोड़ा बोले भी लेकिन रेगे मास्तर तो आशीवर्चन भी नहीं दे सके। कोई बीस मिनट में कार्यक्रम पूरा हो गया। बाहर से देखने वालों को वह थोड़ा मेलोड्रमेटिक लग सकता है लेकिन उसकी असलियत और आंसुओं से गीली हुई हवा को सबने महसूस किया। गुरूजी तो जैसे धन्य हुए।

अब हम आप जो दिल्ली में बंबई, कलकत्ता जैसे महानगरों में रहते हैं, कला के बाजार में चलने वाले रैकेट और धंधेबाजी को जानते हुए भी भव्य आयोजनों और प्रचार झंझावतों में आ जाते हैं। सन् अड़सठ में गांधी शताब्दी समिति में ही मैं दिल्ली आया। वह देश में मनने वाला सबसे बड़ा शताब्दी समारोह था लेकिन उसकी समाप्ति पर किताब लिखने की जिम्मेदारी लेने के बाद भी मुझ से लिखी नहीं गई। शताब्दी में हमारा समारोह था – गांधी का काम और सपना तो कहीं नहीं था। बल्कि मुझे लगता है कि उसके बाद गांधी हमारे विचार से भी बाहर हो गए आचार से तो बहुत पहले ही निकल गए थे। अभिनंदन ग्रंथों और सम्मान समारोहों, रजत, स्वर्ण और हीरक जयंतियों की असलियत भी हम जानते हैं। हम यह भी जानते हैं कि कैसे हमारी प्रतिष्ठित विभूतियां ही अपने पर अभिनंदन ग्रंथ तैयार करवाती हैं, कैसे वे अपनी स्वर्ण और हीरक जयंतियां मनवाती हैं और कैसे इन तमाम आयोजनों के पीछे लोगों और समाज का आत्मस्फूर्त उत्साह नहीं खुद उन्हीं की इच्छा, योजना और धन भी होता है। लोग आपकी प्रतिभा, आपकी उपलब्धि, आपके योगदान को समझ कर आपकी कद्र करें, आपका सम्मान करें – ऐसी इच्छा होना तो स्वाभाविक है। लेकिन लोग समझें या न समझें और चाहें या न चाहें आप ऐसा आयोजन करवाएं कि दुनिया को लगे कि आप क्या चीज हैं – यह सत्ताकांक्षी राजनेताओं की तो इच्छा हो सकती है, लेकिन कलाकारों, साहित्यकारों, समाजसेवियों और जनसेवकों की कैसे हो सकती है? राजमार्ग पर जैसे शोभायात्राएं निकलती हैं उनमें तो अक्सर नंगे राजा को भी नए वस्त्र पहने हुए बताना होता है। लेकिन क्या यह झूठ कलाओं के पथ या पगडंडी पर चल सकता है।

गुरूजी ने एक छोटी सी कला प्रदर्शनी में कोई सवा सौ लोगों के बीच गुरूजी के चरणों में बैठकर अपने को सम्मानित ही नहीं, धन्य महसूस किया। इसलिए कि वे राजमार्ग को छोड़ कर अपनी पगडंडी पर चलने वाले आदमी हैं। पगडंडी पर चलने वाले तो कुमार गंधर्व भी थे लेकिन पगडंडी पर चलते हुए अगर राजमार्ग उनमें आ मिले तो वे उसे दुत्कार कर नहीं भगाते थे क्योंकि पगडंडी को राजमार्ग में मिलाने की उनकी कोई इच्छा नहीं थी न वे राजमार्ग से आतंकित थे। पगडंडी पर सहज ही राजमार्ग आकर गुरूजी की उंगली पकड़ ले तो उन्हें भी कोई एतराज नहीं होगा लेकिन वे राजमार्ग के तामझाम और जंजाल में नहीं पड़ेंगें। राजमार्ग को बड़ी कटुता से फटकारता भी वही है जिसकी इच्छा होती है कि वह ठाठबाट से उसकी शोभायात्रा निकाले। वो कटु विरोध लपलपाती लालसा का ही दुर्वासा स्वरूप है। सोच समझ कर और जानबूझ कर अपनी पगडंडी पकड़ने वाले को न राजमार्ग का विरोध सताता है, न उसकी उपेक्षा न उसका सहवास। वह जानता है कि उसकी पगडंडी उसे वहीं ले जाएगी जहां उसे पहुंचना है।

ऐसी पगडंडी वाले बहुत से लोग हैं। जैसे राहुल बारपुते – मेरे और राजेंद्र माथुर और शरद जोशी से पहले संपादक। सन् साठ से अब तक के बहुत से दिग्गज संपादक मैंने देखे हैं और राहुल बारपुते उन में किसी से भी कम प्रतिभावान, बहुमुखी और योग्य नहीं हैं। हमारे प्रतिभावान पत्रकार चार स्टोरी लिखते हैं, कुछ लेख छपते हैं और एक अखबार से फुदक कर दूसरे में और तीसरे में और चौथे में पहुंच जाते हैं। वे समझते हैं कि उनका बाजार भाव है और वे जानते हैं कि बाजार में कैसे भाव बढ़ते हैं। ऐसे पत्रकार संपादकों की भीड़ है। वे राजनेताओं, नौकरशाहों और उद्योगपतियों से संपर्क रखते हैं। और उनके आपसी खेल में ऊपर चढ़तें और धड़ाम से गिरते हैं। लेकिन जरा राहुल बारपुते को देखिए। वे संपादक थे तो इंदौर से निकलने वाला नई 'दुनिया हिंदी' का सबसे अच्छा अखबार माना जाता था। लेकिन उसकी शुरुआत तो तब के चार पेजी लोकल जैसी ही थी। राहुल जी चाहते तो हिंदी–अंग्रेजी के किसी भी अखबार में जा, जम और बन सकते थे। नहीं गए। राजनेताओं से दोस्ती नहीं गांठी। राजनैतिक परिस्थितियों का लाभ नहीं लिया। दिल्ली में झंडा गाड़ने की इच्छा नहीं रखी। भोपाल में

भी कला परिषद और भारत भवन में गए राज्य की समितियों में नहीं। कार दफ्तर ने न दी न उन ने मांगी और न ली। साइकल से लूना पर आए और अब काइनेटिक होंडा पर। कोई रुतबा कोई दबदबा कोई पव्वा नहीं बनाया। अखबार का कोई दुरूपयोग तो क्या सदुपयोग भी नहीं किया। कुमार जी के साथ संगत की, बाबा डिके के साथ नाटक, गुरूजी के साथ चित्रकारी, पुल देशपांडे के साथ कला कर्म, बाबा आमटे के साथ समाज कार्य और बैडमिंनट खेलने और स्वीमिंग में लगे रहे। कोई आदर्श संपादक और पत्रकार न भी हो लेकिन अपनी पगडंडी पर चलते रहे। राजमार्ग के किसी मोह में नहीं आए।

सफलता-विफलता दुनिया तय करती है सार्थकता आदमी खुद ढूंढता और अपने अंदाज से पाता है। जरूरी नहीं राजमार्ग वाले सार्थक हो ही नहीं सकते। लेकिन उनकी भी पगडंडी भी होगी जो दुनिया को राजमार्ग पर नहीं दिखती। सार्थक जीवन अपनी शर्तों पर अपने ढंग से जिया जाता है और जीने वाला जानता है वो सार्थक हुआ या निरर्थक। जो भी सचमुच कुछ अपना करने निकला हो उसे पगडंडी ही पकड़नी होगी। बाद में भले ही वह सड़क और राजमार्ग हो जाए। पगडंडी पर अपना कुछ विशेष करने वाले मनीषी ही चल सकते हैं। किसी के बनाए या बताए रास्ते पर चलने वालों में पगडंडी पर चलने का साहस और निश्चय नहीं होता। पगडंडी बना कर चलने वाला बाहर से असुरक्षित और अनिश्चित दिखता है लेकिन अंदर वह जानता है कि कितना सुरक्षित और निश्चित है। राजमार्ग पर चलने वाले बाहर से सुरक्षित और और निश्चित हैं लेकिन अंदर से तमाम शंकाओं, अनिश्चिताओं और रीतेपन से डरे हुए होते हैं। उन्हें हिराकत से मत देखिए। वे दया के पात्र हैं। लेकिन जो पगडंडी पर चल रहा है उसके कदम चूमने और उसका जयकारा लगाने की भी आदत डालिए। नया और सार्थक रास्ता पगडंडी से निकलता है। और पगडंडी पर कहीं निराला, कहीं त्रिलोचन, कहीं विष्णु चिंचालकर और कहीं बैजू-बावरा के भी पदचिन्ह हैं। राजमार्ग पर किसी का पदचिन्ह नहीं रहता - अशोक हो या अकबर या जवाहरलाल नेहरू।

विष्णु चिंचालकर को अगर उन्हीं के शब्दों में कहा जाए तो गेल्या - बताने वाले लोगों की कमी नहीं है। लेकिन रेगे मास्तर से सम्मानित हो कर धन्य महसूस करने वाले गुरूजी समझदारों, चतुरों और व्यावहारिक लोगों से ज्यादा सुखी और सार्थक हैं। दुख और निरर्थकता अपने होने का औचित्य बाहर से पाने में है। पगडंडी वाला आदमी यह औचित्य अपने उस पांव में पाता है जो उसका रास्ता बनाता है।

समाप्त